महाराज अग्रसेन

और अग्रवाल समाज

- निरंजन लाल गौतम

शुभ कामना

अखिल भारतीय अग्रवाल महासभा (रजि०) देहली की ओर से "महाराज अग्रसेन और आज का समाज" विषय पर खुली प्रतियोगिता हेतु लेख आमन्त्रित किये गए थे। इस प्रतियोगिता में भाग लेने वाले विद्वानों में से श्री निरंजन लाल गौतम का नाम उल्लेखनीय है।

प्राप्त लेखों की छानबीन के लिए अखिल भारतीय अग्रवाल महासभा की निर्णायक उप समिति की बैठकों में श्री पं० विष्णु दत्त कविरत्न को परामर्श दाता के रूप में सम्मिलित किया गया था। निर्णायक उपसमिति के सदस्यों ने सभी प्राप्त लेखों का आद्योपान्त अध्ययन करके तथा विचार विनिमय के पश्चात सर्व सम्मिति से श्री निरंजन लाल जी गौतम के लेख को सर्वश्रेष्ठ घोषित किया और इन्हें सम्मानित करने के लिए १०१) का पारितोषिक देने का भी निर्णय किया।

मुझे हार्दिक प्रसन्नता है कि विद्वान लेखक ने अग्रवाल जाति के इतिहास का मन्थन कर नवनीत रूप में ऐसा उपयोगी लेख समाज के सम्मुख प्रस्तुत किया है। ऐसे उपयोगी लेख को प्रत्येक अग्रवाल तक पहुंचाने की दिशा में 'महाराज अग्रसेन और अग्रवाल समाज' लघु पुस्तक का प्रकाशन लेखक का सराहनीय प्रयास है। मुझे यह देखकर हार्दिक प्रसन्नता हुई है कि इस पुस्तक को अग्रवाल समाज ने बड़े प्रेम से अपनाया है, फलतः इसका अब चतुर्थ संस्करण प्रकाशित हो रहा है। अग्रवाल समाज इस प्रकाशन का दिल खोलकर स्वागत करेगा, ऐसी आशा है।

मेरी शुभ कामनाएं इस प्रकाशन के साथ पूर्ववत हैं।

अ० भा० अग्रवाल प्रतिनिधि सम्मेलन, नई दिल्ली, ५–६ अप्रेल १९७५
सं० २०३१ विक्रमी

जे० आर० जिन्दल
प्रधान
अ०भा० अग्रवाल महासभा रजि० (देहली)

श्री जगदीश प्रसाद सरायवाला, हैदराबाद

श्री जगदीश प्रसाद सरायवाला

संसार में ऐसे पुरुषों की संख्या न्यूनतम है जो समाज सेवा अपने आत्म सुख के लिए करते हैं। मानवोचित गुणों से परिपूर्ण श्री जगदीश प्रसाद जी सरायवाला की गणना इसी प्रकार के दुष्प्राप्य व्यक्तियों में ही की जाती है।

हैदराबाद की व्यापारिक प्रतिभाओं तथा सार्वजनिक सेवाओं में अग्रणीय, विख्यात उद्योगपति श्री जगदीश प्रसाद जी सरायवाला का जन्म हरियाणान्तर्गत सराय (नारनौल) निवासी श्री डूंगरसी दास जी के घर में १८ मार्च १९३० को हुआ।

आपने हिन्दी, अंग्रेजी, उर्दू तथा फारसी भाषाओं में प्रवीणता प्राप्त करके अपना व्यापारिक जीवन आरम्भ किया जिसमें प्रभूत सफलता अर्जित की है।

सामाजिक, औद्योगिक तथा राजनीतिक सभी वर्गों में लोकप्रिय, हंसमुख, विनम्र नवयुवक जगदीश प्रसाद जी सरायवाला में दान देने की प्रवृत्ति महर्षि वेदव्यास की शिक्षाओं से प्रेरित है, व्यवहार कुशलता महामन्त्री चाणक्य की चाणक्यनीति से और सबल नेतृत्व की शिक्षा सम्राट अकबर के जीवन से प्रभान्वित है।

श्री जगदीश प्रसाद जी सरायवाला अपने धन का सदुपयोग सदैव समाज सेवा कार्यों में ही करते हैं फलतः—

आपने सन् १९६८ ई० में ढाई लाख रुपए की लागत से आधुनिक सुविधाओं से युक्त 'जगदीश भवन' का निर्माण कराया है जिसके द्वार विवाह आदि शुभ अवसरों के लिए, निःशुल्क, बिना भेदभाव के सभी के लिए, खुले हैं।

इसी जगदीश भवन ट्रस्ट की ओर से एक संस्कृत पाठशाला चलती है।

आप अपने सार्वजनिक सेवा भाव एवं नीति कुशलता के कारण ही सन १९७४ ई० में श्री अग्रसेन समिति, हैदराबाद के अध्यक्ष निर्वाचित हुए, हैदराबाद फिल्म फेंस ऐसोसियेशन के मन्त्री हैं तथा अन्य अनेकों संस्थाओं के उपाध्यक्ष, कोषाध्यक्ष, चेयरमैन आदि पदों को सुशोभित करते हैं।

महाराज अग्रसेन
और
अग्रवाल समाज

अखिल भारतीय अग्रवाल महासभा (रजिस्टर्ड) देहली द्वारा
लेख प्रतियोगिता में सर्वश्रेष्ठ घोषित एवं पुरस्कृत।

अखिल भारतीय अग्रवाल प्रतिनिधि सम्मेलन, नई देहली, १९७५
के अवसर पर
श्री जगदीश प्रसाद जी सरायवाला, अध्यक्ष—श्री अग्रसेन समिति, हैदराबाद
के आर्थिक सहयोग से प्रकाशित

——लेखक——

वैद्य श्री निरंजन लाल गौतम

——प्रकाशक——

अग्रोहाज्योति कार्यालय

७/२८, ज्वाला नगर, शाहदरा देहली—३२

(सर्वाधिकार लेखकाधीन सुरक्षित)

चतुर्थ बार — मूल्य एक प्रति
१००० — १)

मुद्रक:— विज्ञान कला मुद्रणालय, ज्वालानगर, शाहदरा देहली—३२

दो शब्द

श्री निरंजन लाल जी गौतम की ख्याति 'अग्रवाल जाति के इतिहास' लेखकों में है। इनका 'अग्रोतकान्वय', ग्रन्थ अग्रवाल जाति के इतिहास की बेजोड़ रचना है। यही अग्रवाल जाति का पहला इतिहास है, जिसका द्वितीय संस्करण प्रकाशित हुआ है।

किन्तु इस विस्तृत ग्रन्थ को पढ़ने का जिनके पास समय नहीं है, उनकी जानकारी के लिए विद्वान लेखक ने 'महाराज अग्रसेन और अग्रवाल समाज' शीर्षक पुस्तक लिखकर गागर में सागर भर दिया है। यदि कोई सरसरी नजर से भी इस पुस्तक के पन्ने पलट जाए तो भी उसे गौरव पूर्ण जातीय इतिहास की सम्यक जानकारी सहज ही प्राप्त हो सकती है।

विद्वान् लेखक ने अग्रवाल समाज के स्वर्णिम अतीत को वैज्ञानिक ढंग से इसके वर्तमान स्वरूप के साथ जोड़ने का सफल प्रयास किया है। मुझे आशा है कि अग्रवाल समाज का नवयुवक वर्ग इस लघु पुस्तक द्वारा अपने गौरव पूर्ण अतीत की झांकी लेकर आज की बदलती हुई परिस्थितियों में भी अपने जातीय इतिहास के साथ निज सम्बन्ध बनाए रखने में गौरव अनुभव करेगा।

मैं ऐसे उपादेय प्रकाशन का हार्दिक स्वागत करता हूं और कामना करता हूं कि ऐसे जानकारी परक प्रकाशन का जातीय बन्धु समुचित आदर करेंगे जिससे इसकी अधिकाधिक संख्या में पुनरावृत्ति हो सके

खुरजा
अग्रसेन जयन्ती पर्व
सं० २०२८ विक्रमी

विशन चन्द गुप्त
उप प्रधान
अ० भा० वैश्य अग्रवाल महासभा

महाराज अग्रसेन की जीवनी

जीवन परिचय

आग्रेय गण–राज्य संस्थापक, अग्रवंश शिरोमणि, अग्रवाल जाति के पितामह, देवतुल्य, प्रातः स्मरणीय महाराज अग्रसेन, का जन्म महालक्ष्मी व्रत कथा के अनुसार प्रताप नगर के राजा धनपाल के वंश में, राजा बल्लभ के घर मंगसिर वदी पंचमी, दिन शनिवार विक्रम संवत् ३१२९ वर्ष पूर्व (कलयुग से ८५ वर्ष पूर्व आजकल कलयुग सम्बत् ५०७५ चल रहा है) हुआ था।

महाराज अग्रसेन महाप्रतापी और शक्ति शाली आग्रेय गणराज्य के राजा थे। इनके गण राज्य की सीमाएं उत्तर में हिमालय से नीचे यमुना तक, पश्चिम में वर्तमान मारवाड़ सीमा को छूते हुए, पूर्व में आगरा तथा दक्षिण में अग्रोहा तक थीं।

इन्द्र से लड़ाई

महाराज अग्रसेन के शौर्य को देखकर नाग लोक के राजा कुमुद ने अपनी पुत्री माधवी का विवाह अग्रसेन के साथ कर दिया किन्तु देवों के राजा इन्द्र भी माधवी केसाथ विवाह करना चाहतेथे अतः महाराज अग्रसेनके वैभव को देख देवताओं का राजा इन्द्र उनसे ईर्षा करने लगा। फलतः अग्रसेन और इन्द्र में युद्ध छिड़ गया। इन्द्र की शक्ति महान थी। साथ ही अग्रसेन के राज्य में दीर्घ काल तक वर्षा न हुई। परिणाम स्वरूप सूखा के कारण राज्य में अकाल पड़ गया अतः इन्द्र पर विजय पाने के लिए अग्रसेन ने लक्ष्मी की पूजा शुरू की। अग्रसेन की पूजा से प्रसन्न होकर महालक्ष्मी प्रकट हुई और उन्हें आशीर्वाद दिया तथा इन्द्र पर विजय प्राप्त करने के लिए, कोलपुर के नागराज महीधर की कन्याओं के स्वयंबर में जाने का आदेश दिया।

महालक्ष्मी की आज्ञा का पालन करके अग्रसेन कोलपुर पहुंचे और नाग कन्याओं के साथ पाणिग्रहण करने में सफल हुए। नागराज महीधर ने विवाह में अग्रसेन को बहुत से हाथी, रथ, घुड़ सवार, पैदल सेना, दास दासियां, हीरे, मोती, अतुलधन, स्वर्ण, और बहुमूल्य पदार्थ दिए। उन दिनों नागराज बहुत बलशाली था अतः ऐसे बलशाली राजा की सहायता प्राप्तकर महाराज अग्रसेन की शक्ति बढ़ गयी। अन्त में इन्द्र ने नारद जी को बीच में डालकर वैश्यों के राजा अग्रसेन से सन्धि कर ली।

ग्रहस्थाश्रम में प्रवेश

महाराज अग्रसेन ने इस सन्धि द्वारा युद्ध कार्य से निवृत होकर यमुना तट पर महालक्ष्मी की पूजा आरम्भ कर दी। इस पर महालक्ष्मी ने पुनःआदेश दिया कि हे राजन्! अपना तपस्या बन्द करो, गृहस्थाश्रम का पालन करो, क्यों कि यही चारों आश्रमों का आधार है, सभी इस आश्रम की शरण लेते हैं। तुम्हारे वश के लोग सदैव सुखी रहेंगे तुम्हारा कुल तुम्हारे नाम से प्रसिद्ध होगा। तुम्हारी प्रजा अग्रवशी कहलाएगी, तुम्हारे कुल में मेरा पूजा होती रहेगी अत यह कुल वैभवशाली रहेगा यह कह कर महालक्ष्मी अन्तर्ध्यान हो गई। महाराज अग्रसेन महालक्ष्मी की आज्ञानुसार अपनी राजधानी प्रताप नगर में पुनः लौट आए।

अग्रोहा निर्माण

जिस स्थान पर इन्द्र को वश में किया गया था वह स्थान हरिद्वार से पश्चिम दिशा में १४ कोस दूर गंगा यमुना के बीच में है वहां महाराज अग्रसेन ने एक स्मारक बनवाया था।

कुछ समय पश्चात महाराज अग्रसेन ने एक नए नगर की स्थापना की और उसका नाम अग्रोहा रखा। इस नगर का विस्तार १२ योजन में था उस नगर को बसाने में करोड़ों रुपए खर्च हुए। नगर चार मुख्य सड़कों द्वारा विभक्त था। प्रत्येक सड़कके दोनों ओर राजमहल क ऊंचे ऊंचे भवनों की पंक्तियां थीं। नगर में बहुत से उद्यान व कमलों से भरे हुए विशाल तालाब थे। नगर के बीच में देवी महालक्ष्मी का विशाल मन्दिर स्थापित किया गया था, जहां दिन रात लक्ष्मी की पूजा होती रहती थी। इसी नगर का नाम अग्रोहा था जो दिल्ली से ११३ मील आजकल फतेहाबाद तहसील के अन्तर्गत सिरसा हिसार की सड़क पर एक गाँव के रूप में विद्यमान है और प्राचीन नगर के अवशेष खण्डहर ६५० एकड़ भूमि में टीले के रूप में फैले हैं।

महाराज अग्रसेन ने अग्रोहा का निर्माण कराके उसमें अपने वंश के लोगों के साथ वैश्यों को बसाकर उसे वैश्य गण राज्य की राजधानी बनाया। इनके समय में अग्रोहा म वैश्यों के एक लाख घर थे जो १८ परिवारों में बंटे हुए थे।

अठारह यज्ञों का आयोजन

महाराज अग्रसेन ने अग्रोहा और अग्रपुर (आगरा) बसाए। अग्रोहा में स्वयं महाराज अग्रसेन १८ गण प्रतिनिधियों के सहयोग से राज करते थे और अग्रपुर (आगरा) का राज्य अपने भाई शूरसेन को सौंप दिया था। दोनों भाई सुख पूर्वक राज्य करने लगे तब गर्ग मुनि के परामर्श से महाराज अग्रसेन ने अपने भाई शूरसेन की सहायता से १८ यज्ञ कराने का निश्चय किया। सब देशों में यज्ञ का निमन्त्रण भेज दिया गया। यज्ञ का समाचार सुनकर मुनि, देवता और विद्वान यज्ञ में

सम्मिलित होने के लिए अग्रोहा पहुंचे। आतिथ्य सत्कार का सारा प्रबन्ध शूरसेन के हाथ में था और अतिथियों के आदर सत्कार में कोई कमी नहीं की गई थी। यज्ञ के अधिष्ठाता महाराज अग्रसेन बने।

यज्ञ में ब्रह्मा का आसन गर्ग मुनि ने ग्रहण किया। १७ यज्ञ निर्विघ्न पूरे हो गए। १८ वें यज्ञ से पूर्व रात्रि क समय महाराज को बोध हुआ और उन्हें यज्ञ में की जाने वाली पशुवलि से घृणा हो गई उनके मन में हिंसा के प्रति घोर द्वन्द्व चलने लगा। वे सोचने लगे कि जिस हिंसा से नीच लोग नरक को पाते हैं मैं उसी हिंसा को प्रोत्साहन दे रहा हूं। वैश्यों का परम धर्म पशु रक्षा है। पशुवध तो महापाप है मैं यज्ञ में पशुवलि देकर महापाप करूंगा। १८ वें दिन प्रातः महाराज यज्ञ में नहीं पहुंचे, याज्ञिक लोग प्रतीक्षा कर रहे थे अन्त में शूरसेन महाराज के पास पहुंचे और अपने भाई को घोर चिन्ता में मग्न पाया

शूरसेन ने हाथ जोड़कर महाराज से चिन्ता का कारण जानना चाहा तो अग्रसेन ने कहा वैश्यों का कर्तव्य पशुधन की रक्षा करना है, हिंसा करना महापाप व वैश्यों के लिए निषेध है, मैंने बड़ी भूल की कि यज्ञ में पशुवलि की आज्ञा दी, न जाने इसका क्या फल मुझे भोगना होगा, कितने जन्म जन्मान्तर तक नरक में वास करना होगा यह कहकर महाराज अग्रसेन ने शूरसेन को आदेश दिया कि इस हिंसामय यज्ञ को बन्द करो इसी में हमारा भला है।

शूरसेन ने विनय पूर्वक महाराज से निवेदन किया कि हे दुखियों पर दयालु, मेरे वचन को सुनो, अब केवल एक यज्ञ शेष रहा है, उसे पूर्ण कर लें यही अच्छा है इसके पश्चात् हिंसामय यज्ञ मत करना, यह मेरी सम्मति है। यज्ञ का समय टल रहा है, इसलिए शीघ्र ही यज्ञ मंडप में पधारें।

इस पर अग्रसेन ने शूरसेन को समझाया कि तुम समझदार होकर भी ऐसी बात मुझे कहते हो। मनुष्य को जहां तक भी हो सके पाप कर्म से बचना चाहिए। जितना ही वह पाप कर्म से बचेगा उतना ही उसका कल्याण होगा। पशु हिंसा बड़ा पाप है। तुम्हें भी पशु हिंसा रोक देनी चाहिए। तुम्हें मेरी बात मानकर प्रतिज्ञा करनी चाहिए कि हमारे वश में कोई हिंसा न करे।

महाराज की धर्मानुकूल आज्ञा से प्रभावित होकर शूरसेन के मन में भी हिंसा के प्रति घृणा हो गई। दोनों भाई राजमहल से चलकर यज्ञ स्थल पर पहुंचे, पण्डितों के आदेश से महाराज ने सिंहासन ग्रहण किया और अपने सभी पुत्रों पुत्रियों तथा परिवार क सभी अन्य सदस्यों को अपने पास बैठाया और सभी उपस्थित जनों को सम्बोधित करके बोले :-

अहं स्वभ्रातृन पुत्रांश्च तथा कन्या कुटुम्बिनः।
इदमेवोपदिशामि न कश्चिद्वधमाचरेत ।।

यज्ञ में पशु हिंसा से मेरे मन में घृणा उत्पन्न हो गई है, मैं पशु हिंसा को उचित नहीं समझता। अतः मैं अपने सभी भाई, पुत्रों, कन्याओं तथा कुटुम्बियों को उपदेश देता हूं कि कोई भी हिंसा न करे

विचार परिवर्तन का प्रभाव

महाराज अग्रसेन के इस विचार परिवर्तन का वैश्य जाति के जीवन पर बड़ा भारी प्रभाव पड़ा। यही कारण है कि वैश्य मात्र में अहिंसा, निरामिष भोजन, दया, धर्म और सदाचार वंश परम्परागत प्रचलित हैं।

महाराज अग्रसेन की जाति

कई लोग महाराज अग्रसेन को क्षत्रिय जाति का राजा मानते हैं और कहते हैं कि उन्होंने किसी कारण आगे चलकर वैश्य धर्म

स्वीकार कर लिया था। किन्तु हम इस विचार से सहमत नहीं हैं। हमारी यह दृढ़ धारणा है कि महाराज अग्रसन जन्म से ही वैश्य थे। हमने महाराज अग्रसेन का जन्म कलयुग से ८५ वर्ष पूर्व द्वापर के अन्तिम चरण में अंकित किया है। वह काल वर्ण परिवर्तन का न था अपितु उस समय जन्म से जातियों का प्रचलन हो चुका था महाभारत में अन्य जनपदों के साथ वैश्य जनपद का भी उल्लेख है

उस समय दो प्रकार के गणराज्य थे :-

(१) वार्ता शस्त्रोपजीवी (२) राज शस्त्रोपजीवी।

उस समय की परम्परा के अनुसार वैश्यों को वार्ता शस्त्रोपजीवी कहा जाता था जिसका अर्थ है व्यापार के साथ रक्षा के लिए आवश्यकता पड़ने पर युद्ध करने वाली जाति। इस गुण के कारण कुछ लोग भ्रम वश हमारा निकास क्षत्रियों में से बताते हैं जो गलत है वास्तव में महाराज अग्रसेन जन्म से ही वैश्य जाति के थे और वैश्य गण राज्य के संस्थापक तथा वैश्यों के संगठन कर्ता थे।

निज परिवार

महाराज अग्रसेन का निज गोत्र गर्ग था।

उनकी १८ रानियां थी, ५४ पुत्र तथा १८ पुत्रियां थीं।

अन्तिम जीवन

उन्होंने कलयुग सम्वत् १०८ में राज त्याग दिया। वे तपस्या के लिए ब्रह्मसर चले गए तथा तप करते हुए कलयुग सम्वत् ११९ में (२९२५ विक्रम सम्वत पूर्व) आज से ४९५६ वर्ष पूर्व अग्रहण मास की एकादशी के दिन २०४ वर्ष की आयु में ब्रह्म में लीन हो गए।

❀

महाराज अग्रसेन और अग्रवाल समाज

❀

जातियों की उत्पत्ति

"महाराज अग्रसेन और अग्रवाल समाज" विषय को समझने के लिए भारत में जातीय इतिहास के क्रमिक विकास को समझना परम आवश्यक है, क्योंकि भारत में जातियों का इतिहास देश और विदेश में बहुत समय से मनन, अध्ययन और चिन्तन का विषय रहा है और इसने यहां के समाज में एक नई व्यवस्था को जन्म दिया है। आइये यहां हम पहले उसी जातीय इतिहास के क्रमिक विकास पर विचारें।

सृष्टि के प्रारम्भ में तो मानव मात्र का केवल एक वर्ग विशेष था, वर्तमान जातियां न थीं अपितु जिसे ब्राह्मण कहा जाता था उसका अर्थ विद्वान था, किसी जाति का बोधक न था। ऋग्वेद संसार के पुस्तकालय में सबसे प्राचीन ग्रन्थ है और उसकी १० हजार ऋचाओं में से किसी से भी जातीय शब्द का बोध नहीं होता और इसके विपरीत उत्तर काल की कोई ऐसी पुस्तक नहीं जिसमें जाति भेद का वर्णन न हो

हां, वैदिक काल में वर्ण शब्द का प्रयोग होता था और उनमें वर्णों का रूप आज जातियों के रूप में विद्यमान है। ऋग्वेद में वर्ण शब्द का प्रयोग उस समय के समाज में विद्यमान मनुष्यों के दो भेदों आर्य और अनार्य के लिए हुआ है (ऋग्वेद ३/३६/४)। याद कहीं क्षत्रिय, ब्राह्मण, विश: और शूद्र का प्रयोग हुआ है तो उसका तात्पर्य केवल मनुष्य विशेष के गुणों से है, जैसे ब्राह्मण शब्द किसी जाति का बोधक न होकर केवल मननशील विद्वानों के लिए प्रयुक्त हुआ है। इसी प्रकार क्षत्रिय शब्द से तात्पर्य 'बलवान' और 'रक्षक' से है (ऋग्वेद ६४/२ तथा ७/८६/१) और विप्र शब्द का प्रयोग बुद्धिमान के लिए हुआ है जिसका प्रयोग आज ब्राह्मण के लिए किया जाता है। (ऋग्वेद ८/११/६)

मेरे उपरोक्त कथन का तात्पर्य यही है कि आज से लगभग ६००० वर्ष पूर्व समाज में जातियों का प्रादुर्भाव नहीं हुआ था। सभी लोग उस समय मिलकर रहते थे और ऋग्वेद काल के अन्त तक भारत वर्ष में यही क्रम चलता रहा (पी० एन० बोस कृत हिन्दू सिविलाइजेशन अण्डर ब्रिटिश रूल भाग–२)

चार वर्ण

किन्तु आगे चलकर जातीयता का बीजारोपण उस समय हुआ जब कि मानव समाज में पहली बार ब्राह्मण वर्ग एक पृथक समूह रूप में प्रकट हुआ। प्रारम्भ में केवल ब्राह्मण ही थे इसका प्रमाण बाल्मीकि रामायण (उत्तराकाण्ड अध्याय ७४) में दिया है कि सत्युग में केवल ब्राह्मण ही तपस्या करते थे और क्षत्रियों की उत्पत्ति त्रेता युग में हुई तथा अन्य जातियां बनीं। इस उल्लेख का तात्पर्य भी यही है कि धर्माध्यक्ष रूप में प्रारम्भ में केवल ब्राह्मण समाज था किन्तु जब शत्रुओं से रक्षा हेतु बलवानों की आवश्यकता हुई तो क्षत्रियों की उत्पत्ति

अनिवार्य हो गई। जब इन दोनों वर्णों के भरण पोषण के लिए व्यक्तियों की आवश्यकता हुई तो उनका विश: वर्ण बन गया और इन तीनों वर्णों का सेवा कार्य शूद्रों को सौंपा गया (आर० सी० दत्त कृत हिस्ट्री आफ सिविलाइजेशन इन एशियेन्ट इण्डिया भाग १ पृष्ठ सख्या १५४)। हमारे इस कथन की पुष्टि में वृहदारण्यक का मन्त्र १/४/११ उल्लेखनीय है जहां स्पष्ट रूप से कहा गया है कि सृष्टि के प्रारम्भ में एक मात्र ब्राह्मण वर्ण था और जब यह जाति अकेले न चल सकी तो उसकी रक्षा के लिए क्षत्रियों की सृष्टि हुई।

गुण कर्म से

उपर्युक्त उदाहरणों से यह भी प्रकट होता है कि वर्णों की उत्पत्ति कर्म से हुई थी। जन्म से न कोई ब्राह्मण था न कोई क्षत्रिय, न विश: न शूद्र। (यजुर्वेद २३/२ महाभारत शान्तिपर्व १८६/२७) वर्ण का निर्णय गुण, कर्म और स्वभाव से होता था (महाभारत शान्ति पर्व १९८/२/८ अनुशासन पर्व १४३/५१ आदि)। कोई भी व्यक्ति अपनी इच्छानुसार अपना व्यवसाय चुन सकता था और बदल भी सकता था किन्तु व्यवसाय के साथ उसका वर्ण भी बदल जाता था। (ऐतरेय ब्राह्मण ४/१/१९०) इस सन्दर्भ में उपनिषदों में अनेक उद्धरण देखे जा सकते हैं जैसे महामुनि सत्यकाम, जाबाल दासी के पुत्र थे, ऐतरेय मुनि इतरा शूद्रा के पुत्र थे, दीर्घतमा ऋषि शूद्र दासी उशिज के पुत्र थे इसी प्रकार के अनेक उदाहरण महाभारत वन पर्व में भरे पडे हैं। स्वयं महाभारत के रचियता वेदव्यास केवट पुत्री की जारज सन्तान थे और इनके पिता पाराशर काजन्म चाण्डाली के घर हुआ था, वशिष्ठ गणिका पुत्र थे। तपस्वी विश्वामित्र का जन्म क्षत्रिय वंश में हुआ था। ब्रह्म ज्ञान के उपदेष्टा क्षत्रिय भी थे। जनक, अजातशत्रु, अश्वपति, केकय प्रवाहण

जेवालि आदि अनेक ब्रह्मवेत्ता क्षत्रिय राजे हुए हैं जिनसे ब्राह्मण ऋषि भी ब्रह्म विद्या सीखने जाते थे। (बृहदारण्यक उपनिषद ३/१/१/तथा ६/२/१)

एक ही परिवार में भिन्न व्यवसायी भी थे यथा ऋषि पुत्र अगिरस अपना परिचय देते हुए कहते हैं कि :-

मैं स्तवन रचना करता हूं, मेरे पिता वैद्य हैं और माता पिसनहारि है। (ऋग्वेद ९/११/३)

इन सब उद्धरणों के उल्लेख से मेरा तात्पर्य यही है कि उत्तर काल में योग्यता और बुद्धि से कर्म की प्राप्ति होती थी और कर्म से वर्ण का निर्धारण होता था। (शतपथ ब्राह्मण ११/६/२/१०, तैतरेय संहिता १/६/१)। इस कथन की पुष्टि में बौद्ध कथा साहित्य मे एक सुन्दर उल्लेख है :-

न जच्चा ब्राह्मणो होति न जच्चा होति अब्राह्मणो।
कम्मना ब्राह्मणो होति। कम्मना होति अब्राह्मणो ॥

वैदिक काल में विशः शब्द का प्रयोग पृथ्वी पर बस गई सम्पूर्ण जाति के लिए होता था किन्तु धीरे धीरे जब ब्राह्मण, क्षत्रिय और शूद्र वर्णों की स्वतन्त्र सत्ता बन गयी तो शेष जनता के लिए विशः शब्द का प्रयोग होने लगा (ऋग्वेद ८/३५/१७-१८) यही विशः शब्द विश्य और वैश्य में बदल गया। सब से पहले वैश्य शब्द का प्रयोग ऋग्वेद के दशं मंडल के पुरुष सूक्त में हुआ है। इस वर्ग का प्रमुख कर्म खेती पशुरक्षा, व्यवसाय और हस्तकलाओं का निर्माण आदि थे।

वैदिक काल में ही वर्ण व्यवस्था के साथ भिन्न २ कर्मों के आधार पर कुम्हार, केवट, ग्वाला, धीवर, नाई आदि जातियां भी बनगयी थीं। ब्राह्मणों तथा क्षत्रियों में अनेकों उप वर्गों का जन्म हो चुका था।

आवश्यकतानुसार तथा परिस्थिति वश कार्यों के विस्तार के साथ साथ ये कर्मी वर्ग ही जातियों में बदल गए।

गणों की स्थापना

समाज मे बदलती परिस्थतियों के अनुसार मुनियों ने विविध सूत्र ग्रन्थों की रचना की और बढ़ते हुए समाज और उगते हुए जाति समूहों के लिए नियम और व्यवस्थायें निर्धारित की। इन सूत्र ग्रन्थों में गौतम कृत धर्म सूत्र का बड़ा महत्व है। गौतम धर्म सूत्र व्यवस्था १०/४९ के अनुसार एक ही व्यवसाय या कार्यों में लगे व्यक्तियों का समूह अपना गण बना सकता था। (१०/२०/२१ गौतम-धर्म-सूत्र) गण की रक्षा हेतु सेना रखने का भी अधिकार इन गणों को था (कौटिल्य अर्थ-शास्त्र ९/२/१) इस प्रकार इन गणों की आन्तरिक व्यवस्था एवं सुरक्षा सम्बन्धी सभी अधिकारों की मान्यता राज्यों की ओर से होती थी। एक प्रकार से वह जनपद और गण विदेशों के सिटी स्टेट के रूप थे।

अनेकों 'गण और जनपदों के साथ वैश्य जनपद का वर्णन हमें सर्व प्रथम महाभारत में मिलता है।

"क्षत्रियोपनिवेशश्च वैश्य शूद्र कुलानि च,
शूद्राभीरश्च दरदः काश्मीरः पशुभिः सह।"

(भूमिपर्व अध्याय९/६७)

अर्थात क्षत्रियों के उपनिवेश तथा वैश्य, शूद्र आभारी, दरद, कश्मीर तथा पशुपति नाम के जनपद बने।

अग्रोहा गण की स्थापना का कारण

हमने ऊपर ऐतरेय ब्राह्मण (४/१/ब्र०) का उल्लेख करते हुए बताया कि उत्तर काल में प्रत्येक व्यक्ति को उसकी इच्छानुसार

व्यवसाय बदलने तथा आवश्यकतानुसार व्यवसाय चुनने की स्वतन्त्रता थी किन्तु हारीत और बोधायन ने व्यक्ति के व्यवसाय परिवर्तन की स्वतन्त्रता छीन ली, विशेषकर वैश्य वर्ग के लिए अपनी व्यवस्था देते हुए बताया कि यदि कोई वैश्य निज कर्म को बदलना चाहे तो वह ब्राह्मण और क्षत्रियों का कर्म ग्रहण नहीं कर सकता अपितु शूद्र कर्म स्वीकार करे।

दूसरी व्यवस्था में कहा गया कि वैश्य कर्म के साथ वेदाध्ययन का भी कोई औचित्य नहीं है। इससे वैश्य वर्ग के वेदाध्ययन का भी हनन हो गया। इस प्रकार हम देखते हैं कि ब्राह्मण और क्षत्रियोंके गठबन्धन के परिणाम स्वरूप वैश्यों की कर्म परिवर्तन और वेदाध्ययन की स्वतन्त्रता छिनगई। इस सन्दर्भ में हम स्मृतिकारों की कुछ व्यवस्थाओं का भीउल्लेख करना आवश्यक समझते हैं जिनसे यह प्रकट हो जायेगा कि किस प्रकार वैश्यों के कर्म बदले जाने लगे और वैश्य जाति की सामाजिक स्वतन्त्रता की रक्षा हेतु वैश्य जाति के संगठन परक अग्रोहा गण को स्थापना की गई।

स्मृतिकारों द्वारा वैश्य कर्मों में परिवर्तन

स्मृति ग्रन्थों में अत्रि स्मृति सर्वाधिक प्राचीन है। इसक अनुसार वैश्यों के लिए निम्नांकित कर्म निर्धारित हुए :—

दानमध्ययन वार्ता यजन चेति वै विश:
(अत्रि स्मृति अध्याय १ श्लोक १५)

अर्थात (१) दानदेना, (२) वेदाध्ययन करना, (३) व्यापार तथा (४) यज्ञ करना ये चार कर्म वैश्य जाति के लिए थे।

आवश्यकता और बढ़ते कार्यों के अनुसार मनु ने वैश्यों के लिए चार से बढ़ाकर सात कर्म निर्धारित किए:-

पशूनां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च।
वणिक पथं कुसीदं च वैश्यस्य कृषिमेव च।।
(मनुस्मृति अध्याय १ श्लोक ९०)

(१) पशुओं की रक्षा, (२) दान देना, (३) यज्ञ करना, (४) अध्ययन करना, (५) वाणिज्य करना, (६) ब्याज लेना तथा (७) कृषि करना।

इस प्रकार हम देखते हैं कि अत्रि तथा मनु द्वारा निर्धारित कर्मों से वैश्य जाति व्यापार में अग्रसर हो गयी, साथ ही नाभारेष्ठि भलन्द वात्सप्रि, माकिल, जैसे मन्त्रदृष्टा ऋषि वैश्य जाति को उपलब्ध हुए जिन्हें वैश्य जाति प्रवर कहा जाता है। वेदाध्ययन के फलस्वरूप ही समाधि जैसे तपस्वी धनी वैश्य इस जाति में जन्म लेते रहे।

किन्तु आगे चलकर हारीत मुनी ने अपने स्मृति ग्रन्थ में वैश्यों के सात कर्मों में से अध्ययन और यज्ञ करने के दो कर्म छीन लिए:-

गोरक्षां, कृषिवाणिज्यं कुर्याद्वैश्य यथा विधि।
दनिदेयं यथाशक्तया ब्राह्मणानां भोजनम् ।।
(हारीत स्मृति, अध्याय २ मन्त्र ६)

अर्थात वैश्य गोरक्षा, कृषि वाणिज्य यथाविधि करें एव यथाशक्ति दान दें तथा ब्राह्मणों को भोजन करायें।

हारित मुनि तथा बोधायन मुनि की व्यवस्थाओं के अनुसार वैश्यों का वेदाध्ययन एवं यज्ञ करने का अधिकार छिन जाने से वैश्य समाज में ऋषि मुनियों एवं याज्ञिकप्रतिभाओं के आगमन का स्रोत रुक गया।

महाराज अग्रसेन का अवतरण

महाभारत काल में लगभग १०० वर्ष पूर्व तो वैश्यों की स्थिति इतनी दयनीय हो गयी थी कि (१) उसके किसी महापुरुष का किसी भी धर्मग्रन्थ में कहीं उल्लेख नहीं मिलता।

(२) वैश्यों की कर्म बदलने की स्वतन्त्रता छिन चुकी थी।

(३) वेदाध्ययन और यज्ञ करने के अधिकार छिन चुके थे।

ऐसी विषम परिस्थितियों में आज से ५१६० वर्ष पूर्व (कलयुग से ८५ वर्ष पूर्व) जब कि जन्मगत जातियों का प्रादुर्भाव हो चुका था, वैश्य जाति के संगठन कर्ता अग्रकुल शिरोमणि महाराज अग्रसेन का जन्म हुआ। नवयुवक अग्रसेन से वैश्य जाति की हीनावस्था न देखी गयी। वे आस्तिक, सबल व बुद्धिमान थे। उन्होंने गौतम धर्म-सूत्र का अध्ययन किया और उसकी व्यवस्था (१०/४९ तथा १०/२०/२१) के अनुसार (कि एक प्रकार का कार्य करने वाले अपना संघ बनालें) वैश्य जनपद की स्थापना की किन्तु ब्राह्मण और क्षत्रियों के विरोध के कारण देवों के राजा इन्द्र से उनका सघर्ष छिड़ गया। उन्हीं दिनों भारत के दक्षिण पश्चिम में नागवंश प्रबल शक्तिशाली राज्य था जिसके पांडवों के साथ घनिष्ट सम्बन्ध थे और इन्द्र की पांडवों के साथ घनिष्ठता थी, देवयोग से उन्ही दिनों नागराज कुमुद ने अपनी कन्या माधवी का स्वयंबर रचाया, जिसमें वैश्य जनपद संस्थपक महाराज अग्रसेन ने भी भाग लिया और वरमाला उन्हीं को पहनायी गयी। नागवंश के साथ सम्बन्ध स्थापित होने के कारण और नारद के बीच बचाव के फल स्वरूप महाराज अग्रसेन और नागों के घनिष्ठ मित्र पाण्डवों तथा इन्द्र में सन्धि हो गयी।

अग्रोहा और आगरा की स्थापना

अब महाराज अग्रसेन ने वैश्य जनपद को सुदृढ़ बनाने के लिए वैश्य गण राज्य की स्थापना की और अग्रोहा बसाकर उसको इस गण राज्य की राजधानी बनाया। आगे चलकर वही वैश्य जनपद अग्रोहा गण राज्य के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

महाराज अग्रसेन ने जब अग्रोहा की स्थापना करली तो अपने गण राज्य के पूर्वी भाग के प्रबन्ध और सुसंचालन के लिए अग्रपुर (आगरा) नगर बसाया और उसका प्रबन्ध अपने भाई शूरसेन के हाथ सोंप दिया, ऐसा उरुचरितम् में वर्णित है। किन्तु आगरा में अग्रवालों की जितनी संख्या है और उनकी जैसी धारणा है, ऐसा लगता है कि यह नगर महाराज अग्रसेन के बाद उनके पुत्र विभु ने बसाया है। आज दिन आगरा शहर और आस पास के क्षेत्र में अन्य शहरों और स्थानों की अपेक्षा अग्रवालों की सर्वाधिक संख्या है। कहते हैं कि विभु ने अग्रपुर नाम से इस नगर को बसाया था और आज दिन यह आगरा नाम से प्रसिद्ध है।

अग्रसेन और अग्रोहा का काल निर्णय

महाराज अग्रसेन और अग्रोहा गण राज्य की स्थापना के काल निर्णय सम्बन्धी अनेकों भ्रांतियां फैली हुई हैं और कोई ठोस प्रमाण न होने से यह विषय ऐसे ही 'अपनी अपनी ढपली और अपना अपना राग' कहावत को चरितार्थ कर रहा है। ये भ्रांतियां लम्बी छलांग लगाने तथा अपने को अधिकाधिक प्राचीन सिद्ध करने की भावना से ही निराधार रूप में चली आ रही है। यदि कल्पना की लम्बी उड़ान को त्याग कर वास्तविकता की गोद में बैठकर और सभी ग्रन्थों को एक ओर रखकर केवल महाभारत के सहारे भी अपने अस्तित्व को

खोजने का प्रयत्न करें तो हमारी समस्या सुगमता से हल हो सकती है। महाभारत के अनुसार महाभारत युद्ध से पूर्व लगभग ५० वर्ष की अवधि में पहले पाण्डवों की ओर से नकुल ने फिर नकुल विजय से २५ वर्ष पश्चात् कौरवों की ओर से कर्ण ने भारत विजय की है और अपने काल के किसी भी गण राज्य को विजित करने से नहीं छोड़ा नकुल विजय का वर्णन महाभारत में निम्न प्रकार मिलता है :-

ततो बहुधनं रम्यं गवाढ्यं धन धान्यवत् ।
कार्तिकेयस्य दयतं रोहितक मुपाद्रवत ।।
तत्र युद्धं महच्चासीच्छूरैर्भरत मयूरकैः ।
मरुभूमि स कात्स्न्येन तथैव बहुधान्यकम् ।।
(सभापर्व ३५/४/६)

इसके अनुसार नकुल ने रोहतक, मरुस्थल, सिरसा तथा मेहम को जीता था। यहां रोहतक और सिरसा के बीच मरुस्थल है. अग्रोहा या अग्रगण राज्य का वर्णन नहीं है।

इसके विपरीत कर्ण विजय का वर्णन महाभारत के वन पर्व २५४/२० में इस प्रकार है : —

भद्रान रोहितकांश्चैव अग्रोयान मालवानपि,
गणान सर्वान विनिर्जित्य नीतिकृत प्रहसन्निव।

यहां भद्र, रोहतक, आग्रेय, मालव गणों के जीतने का वर्णन है इन दोनों प्रसंगों से यह स्पष्ट है कि नकुल और कर्ण विजय की २५ वर्ष की अवधि में ही मरु भूमि में अग्रोहा गणराज्य की स्थापना हो गई और यही काल महाराज अग्रसेन के जन्म काल से सम्बद्ध है क्योंकि अग्रवैश्य वंशानुकीर्तनम् तथा उरुचरितम् के अनुसार महाराज अग्रसेन ने २५ साल की आयु में विवाह करके अग्रगण राज्य की स्थापना की थी और अग्रोहा नगर बसाया था।

एक बात और भी उल्लेखनीय है कि कौरवों के शासन काल में अग्रगण राज्य वैभव शाली और शक्तिशाली था तथा अन्यगणों के साथ कर्ण ने आग्रेय गण को भी जीता था। महाभारत युद्ध के पश्चात ३६ साल ८ महीने २५ दिन तक युधिष्ठर ने राज्य किया और कलयुग के प्रथम दिन तक राज्य त्याग दिया। यह समय हमारे लिए अग्रोहा की स्थापना और महाराज अग्रसेन की जन्म तिथि के लिए कुंजी का काम करता है अर्थात १. कलयुग से ३६ साल ८ महीने २५ दिन पूर्व महाभारत युद्ध समाप्त हुआ २. महाभारत युद्ध १८ दिन तक चला ३. युद्ध से पूर्व २ साल का समय कौरव और पांडव सन्धिवार्ता में रहे। ४. इससे पूर्व वर्ष तक पांडव बनवास में लगा। ५. इससे २५ वर्ष पूर्व कर्ण ने भारत विजय आरम्भ की थी जिसमें कम से कम १० साल का समय लगना सम्भव है। ६. इसप्रकार कलयुग से लगभग ५० वर्ष पहले कर्ण ने अग्रोहा पर आक्रमण किया। ७. कर्णविजय से पूर्व अग्रोहा निर्माण में १० साल का समय लगना स्वाभाविक है। अतः कलयुग से ६० साल पहले अग्रोहा की स्थापना हुई और अग्रोहा की स्थापना से पूर्व महाराज अग्रसेन की आयु २५ वर्ष थी। ऐसी अवस्था में हम निश्चिन रूप से कह सकते हैं कि महाराज अग्रसेन का जन्म कलियुग से लगभग ८५ वर्ष पूर्व हुआ और अग्रोहा की स्थापना कलयुग से ६० साल पहले हुई यही समय कलियुग से ५० साल पहले कर्ण विजय और उससे २५ साल पहले नकुल विजय का है। जैसा हम बता चुके हैं महाराज अग्रसेन का जन्म कलयुग से ८५ साल पहले अर्थात आज से ५१६० साल पहले हुआ था। यह समय द्वापर का अन्तिम चरण है। यदि रायभाटों की निश्चित तिथि में केवल 'द्वापर अन्तिम चरण' कर दें तो महाराज अग्रसेन की जन्म तिथि 'वदि मंगसिर शनि पंचमी द्वापर अन्तिम चरण' बैठती है

अर्थात मंगसिर वदि पचमी दिन शनिवार विक्रम सम्वत् ३१२६ वर्ष पूर्व निश्चित होती है।

महाराज युधिष्ठर ने कलयुग के प्रथम दिन ही राज्य त्याग कर परीक्षित को राज्य सोंप दिया और वे पांचों पाडवों सहित हिमालय की ओर चले गए। परीक्षित ने ६० साल तक राज्य किया किन्तु इसी बीच में नागों के साथ परीक्षित के सम्बन्ध अच्छे नहीं रह सके और इनके साथ युद्ध में परीक्षित मारे गए। परीक्षित के पश्चात जनमेजय राजा बने और ८४ साल ७ महीने २३ दिन तक राज्य किया किन्तु जनमेजय ने अपनी शक्ति बढ़ाई और नागों का सामुहिक वध किया। अन्त में आस्तिक मुनि के बीच में पड़ने से नागराज तक्षक की जान बच गई तथा नाग वंश के बचे हुए लोग मध्य प्रदेश में विदिशा की ओर चले गए। नागवंश के इस विनाश का महाराज अग्रसेन पर भी प्रभाव पड़ा और श्वसुर पक्ष के विनाश से दुखी होकर वे ईशोपासना के लिए ब्रह्मसर चले गए जहां ११ साल तक वे जीवित रहे। हम इससे पहले महाराज अग्रसेन का जन्म काल कलयुग से ८५ वर्ष पूर्व मान चुके हैं। अतः इनकी आयु २०४ वर्ष बनती है। महाराज अग्रसेन की लम्बी आयु से आश्चर्य चकित न हों, इस सन्दर्भ में हमें एक बात यह निवेदन करनी है कि आयुर्वेद के इतिहास के आधार पर (आयुर्वेद इतिहास कविराज सूरम चन्द्र जा कृत पृष्ठ सं० १५०) प्रत्येक युग के लिए मनुष्य की आयु इस प्रकार वर्णित है– सतयुग में ४०० साल, त्रेता में ३०० साल, द्वापर में २०० साल तथा कलयुग में १०० साल। अतः महाराज अग्रसेन जैसे आस्तिक, युग निर्माता के लिए २०४ वर्ष की आयु कोई आश्चर्य की बात नहीं है। फिर महाराज अग्रसेन के समय में वेदव्यास मुनि की आयु ३३० वर्ष थी और द्रोणाचार्य की आयु ४०० साल थी। इसी प्रकार अनेकों दीर्घजीवी द्वापर काल में विद्यमान थे।

वैश्यों का जैन धर्म में प्रवेश

महाभारत युद्ध के पश्चात् मुनि वेदव्यास जीवित रहे और उन्होंने महाभारत में वैश्यों के लिए कर्म निर्धारित करते समय अपने पूर्ववर्ती स्मृतिकारों की परम्परायें तोड़ डालीं और कृषि गौरक्षा वाणिज्यम् वैश्य धर्म स्वभावजम्' की सामान्य व्यवस्था के साथ निर्णय दिया कि

वाणिज्या पशुरक्षा च कृष्या दान रतिः शुचिः।
वेदाध्ययनः सम्पन्नाः स वैश्य इति संशितिः॥

कलान्तर में देश में वाम मार्ग प्रचलित हो गया, लोग वैदिक धर्म की मर्यादाओं से दूर हट गए, सर्वत्र हिंसामय वातावरण फैल गया। अतः देश में जैन धर्म का प्रचार आरम्भ हुआ। अग्रोहा के क तत्कालीन राजा दिवाकर के काल में जैन मुनि लौहाचार्य जी ने अग्रोहा में प्रचार यात्रा की और राजा दिवाकर को जैन धर्म में दीक्षित किया। वैसे भी वैश्य वाम मार्ग तथा हिंसामय वातावरण से तुसित थे अतः बहुत से वैश्यों ने जैन धर्म स्वीकार कर लिया। किन्तु उनके खान पान और बेटी विवाह सम्बन्ध वैदिक धर्मावलम्बी वैश्यों के साथ यथा पूर्व चलते रहे।

अग्रोहा से पलायन

सन ३२६ ई० पूर्व भारत पर विदेशी आक्रमण आरम्भ हो गए अग्रोहा भी इन आक्रमणों की चपेट में आता रहा किन्तु ११९४ ई० में शाहबुद्दीन गौरी के आक्रमण के समय तो पूरी तरह उजड़ गया और सभी अग्रोहा निवासी अग्रोहा छोड़कर राजस्थान के शेखावटी तथा हरियाणा के अन्य क्षेत्रों में जा बसे।

अग्रोतकान्वय (अग्रोहा कुल के)वणिक

अग्रोहा छोड़ने के पश्चात् वे जहां गये अपने साथ 'अग्रोतकान्वय, वणिक तथा गोत्र' तीन शब्द अवश्य ले गए। किसी को अपना

परिचय देते या लेख बद्ध कराते तो अपने आपको 'अग्रोतकान्वय वणिक बताते और अपने गोत्रका उच्चारण करते थे। इसके प्रमाण में सम्वत ११८९ विक्रमी में कविवर श्रीधर ने स्वकृत 'पासणाहं चरित्र में इस रचना के प्रेरणा सूत्र श्री नट्टल साहू का जाति परिचय देते हुए उन्हें 'अग्रोतकान्वय' बताया है। सम्वत १३८४ विक्रमी के एक शिला लेख का उल्लेख लाल किले के अजायब घर में पुराने कैटेलोग में नं० बी–६ था। अब यह नंबर बदल गया है और यह शिला लेख नैशनल म्यूजियम में है। इसमें 'वाणिजामग्रोतक निवासना' (अग्रोतक निवासी वणिक) शब्द का प्रयोग हुआ है। और अपना परिचय देते लिखा है कि अग्रवाल कुल में माँ वीब्हा के गर्भ से उत्पन्न हुए। सम्वत् १४११ विक्रमी में प्रद्युम्न चरित्र काव्य के रचनाकार श्री सधारु ने अपना परिचय देते हुए अपने आपको 'अगरवाल' लिखा है। इस सम्बन्ध में विस्तृत उल्लेख "अग्रोतकान्वय" (अग्रवाल वैश्य जाति का इतिहास) ग्रन्थ में देखें। सम्वत् १८८१ विक्रमी में एक शिला लेख से 'अग्रोतकान्वय गोयल गोत्र का उल्लेख है।

(एपिगेफिक इण्डिका भाग २ पृष्ठ २४३)

इसी प्रकार के अनेकों प्रमाण मैंने अपनी पुस्तक 'अग्रोतकान्वय (अग्रवाल वैश्य जाति का इतिहास) में विस्तार से दिए हैं जिनसे सिद्ध है कि अग्रोहा छोड़ने पर हम अपने आपको 'अग्रोहाकुल' का वैश्य व गोयल (या जो भी जिसका गोत्र था) गोत्रीय या अगरवाल कहते थे।

जैसे जैसे मुस्लिम शासन भारत में अपनी जड़ जमाता गया हम अपने आपको 'अग्रोतकान्वय वणिक' कहना भूल गए। केवल शिला लेख पत्रों आदि में यह शब्द प्रचलित रहा। राज्य की ओर से हमें बक्काल नाम दिया गया जिस से हमारा उद्धार सन् १९०१ की जनगणना के समय अखिल भारतीय वैश्य महासभा के प्रयत्नों से हुआ और एक बार पुनः हमें सरकारी कागजों में वैश्य लिखा गया।

वैश्य और अग्रवाल शब्दों का प्रचलन

एक ओर सन १८९२ ई० में अखिल भारतीय वैश्य महासभा मेरठ के प्रयत्नों से ब्रटिश सरकार पर जोर डाला कि हमें बनिया या बक्काल न लिख कर वैश्य लिखा जाय दूसरी ओर इससे पूर्व भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने सन १८७१ के आस पास सर्व प्रथम 'अग्रवालों की उत्पत्ति' नामक पुस्तक लिखकर अग्रवाल शब्द का प्रचार किया और अग्रोहाकुल के वैश्य' शब्द के स्थान पर 'अग्र का बालक' (अग्रवाल) जनता में प्रचारित किया। अतः १८९० तक अग्रवाल शब्द प्रचलित हो चुका था और सन १८९० ई० में सबसे पहले 'सभाये आजम' नाम से वैश्य अग्रवाल महासभा की बैठक खुर्जा में हुई। तत्पश्चात अग्रवाल नाम सर्वत्र प्रचलित हो गया यद्यपि आगरा और उसके आस पास 'अगरवारे शब्द का प्रचार था।

अग्रवालों के गोत्र

इस प्रकार हम देखते हैं कि सन् १८८० के पश्चात अन्य वैश्यों से पृथक होकर 'अग्रवाल' नामक वैश्यों का अलग वर्ग बन गया जिसमें आज दिन तक १८ गोत्र प्रचलित हैं। जैसा कि हम इससे पूर्व बता चुके हैं कि इन गोत्रों में अधिकांश अपभ्रंश रूप में पाए जाते हैं। जिन गोत्रों की अग्रवालों में इतनी महत्ता में उनके इतने विकृत रूप कैसे मिलते हैं, इस सन्दर्भ में हमें गोत्रोत्पत्ति का सिंहावलोकन करना होगा और गोत्रों के उद्गम स्थान का पता लगाना होगा। वह तो बहु प्रतिपादित है कि हमारे गोत्र महाराज अग्रसेन की सूज बूझ का परिणाम है। उन्होंने 'अग्रोहा कुल के वैश्यों की मर्यादा रखने, भाई भाई को परस्पर विवाह से बचाने और एक कुटुम्ब अपने से भिन्न कुटुम्ब में विवाह करें तथा सभी कुटुम्बों में पारस्परिक प्रेम भाव बढ़ाने की भावना से गोत्रों का वैश्य जाति में प्रचलित कराया।

जैसा कि हम पूर्व उल्लेख कर चुके हैं, महाराज अग्रसेन ने ब्राह्मणों द्वारा उत्पादिय वैश्यों की हीनावस्था से उन्हें मुक्त कराने का हर प्रयत्न किया था । अत: ब्राह्मणों की भांति वैश्यों के भी गोत्र हों और वैश्यों पर भाई बहन में पारस्परिक विवाह का दोष न लगे, अग्रोहा के १८ कुलों को १८ गोत्र मुनियों द्वारा दिलाये । इसके लिए उन्होंने १८ यज्ञों का आयोजन किया । प्रत्येक दिन १८ गण प्रतिनिधियों में से बारी बारी से एक एक प्रतिनिधि यज्ञ का यजमान बनता था और जो मुनि यज्ञ का पुरोहित बनता था उसी का गोत्र यजमान को दे दिया जाता था । इस प्रकार महाराज अग्रसेन का निज गोत्र गर्ग मुनि के नाम से मिला और अन्य १७ गोत्र १७ गण प्रतिनिधियों को मिले जिनकी सूचि आगे दी जावेगी । अब हम गोत्रों के आदि स्रोत का पता लगाने का प्रयत्न करते हैं ।

गोत्रों का उदय

अग्रवालों में १८ गोत्रों का बड़ा महत्व है । प्रत्येक संस्कार के समय तथा वैवाहिक अवसरों पर गोत्रों का उच्चारण आवश्यक माना जाता है । अब तक प्रचलित प्रणाली के अनुसार समान गोत्रीय दो परिवारों के विवाह सम्बन्ध नहीं हो सकते ।

किन्तु अग्रवालों में गोत्रों का इतना महत्व होते हुए भी जितना अज्ञान पाया जाता है और गोत्रों के नामों को जितना बिगाड़ा गया है उतना अन्यत्र नही है । अत: अब हम अग्रवालों के गोत्रों पर विचार करने से पूर्व गोत्रों के आदि स्रोत पर विचार करते हैं

मूलगोत्राणि चत्वारि समुत्पन्नानि भारत ।
अंगिरा कश्यपश्चैव वशिष्ठो भृगुरेव च ।।
(महाभारत, शान्तिपर्व, अध्याय २९८)

इसमें गोत्रों के प्रवर्तक केवल चार ऋषियों को माना गया है और इन्हीं के मूल रूप में चार गोत्र माने गए हैं :–

१. अंगिरा मुनि से अंगिरस गोत्र २. कश्यप मुनि से काश्यप गोत्र
३. वशिष्ठ मुनि से वाशिष्ठ गोत्र ३. भृगु मुनि से भृगु गोत्र

ये चारों ही ऋषि आर्य जाति की सूर्य वंशी शाखा के ऋषि थे और मनु के उस प्रथम दल के सदस्य थे जिन्होंने देवदानव युद्ध से तंग आकर भारत भूमि को बसाया और इसे आर्यावर्त नाम दिया था ।

जब आर्यों की संख्या बढ़ी और आर्यों की दूसरी शाखा चन्द्रवंशी दल ने आर्यावर्त में प्रवेश किया तो उस समय ऋषि संख्या वृद्धि के साथ साथ गोत्रों की संख्या भी बढ़ी और बोधायन के अनुसार सप्त ऋषि: — १. जमदग्नि २. भारद्वाज ३. विश्वामित्र ४. अत्रि ५. गौतम ६. वशिष्ठ ७. कश्यप तथा आठवें अगस्त्य का नाम जोड़कर आठ गोत्र प्रचलित हो गए ।

बोधायन ने इन्हीं ऋषियों को आठ गोत्रों का कारण अर्थात निर्माता माना है ।

जमदग्नि भारद्वाजो विश्वामित्रोऽत्रि गौतमौ ।
वशिष्ठ कश्यपाऽगस्त्या मुनयो गोत्र कारिणा ।।

इस प्रकार प्रारम्भ में प्रचलित ४ मूल गोत्रों के ऋषियों एवं बोधायन द्वारा उल्लिखित आठ ऋषियों के नामों में जो अन्तर है वह इस प्रकार है :—

१. चार मूल गोत्रों के भृगु ऋषि के स्थान पर उनके वंशज जमदग्नि का नाम लिया गया है ।

२. अंगिरस के स्थान पर उनके दो पौत्र (१) गौतम तथा (२) भरद्वाज के नाम लिए गए हैं ।

३. अत्रि, विश्वामित्र और अगस्त्य नए तीन नाम बढ़ाए गए हैं । इस प्रकार आदिकाल में ब्राह्मणों के ८ गोत्र इस प्रकार निर्धारित हुए १. भरद्वाज २. कौशिक ३. वशिष्ठ ४. कश्यप ५. गौतम ६. पाराशर ७. शांडिल्य ८. आत्रेय ।

ब्राह्मणों के प्रचलित गोत्रों में, प्राचीन चार मूल गोत्र और बोधायन द्वारा उल्लिखित ८ गोत्रों में बहुत कम अन्तर आया है और गोत्रों में कोई अशुद्ध रूप तो आ ही नहीं पाया है।

ब्राह्मणों में पंच गौड का भेदभाव उत्पन्न होने पर गौड ब्राह्मणों के पांच गोत्र यथापूर्व हैं :–

१. भारद्वाज २. कौशिक ३. वशिष्ट ४. कश्यप ५. गौतम।

आज दिन ब्राह्मणों के अन्य गोत्र अवश्यमेव (जमदग्नि को छोड़) आठ गोत्रों से भिन्न है यथा: –

१. तिवारी २. उपाध्याय ३. पचौरी ४. तेनगुरिया ५. शुक्ल ६. पाण्डेय ७. मिश्र ८. दीक्षित ९. मुद्गल १०. कात्यायन ११. वात्सायन १२. जैमिनी १३. पतंजलि १४. याज्ञवलक्य। और इस प्रकार गोत्रों की संख्या बढ़ती गई किन्तु ये गोत्र न होकर अल्ल हैं इन अल्लों का ऋषियों के नामों से सम्बन्ध नहीं फिर भी इनके नाम भद्दे और निरर्थक नहीं हैं।

अग्रवालों के १८ गोत्र

अग्रवालों के गोत्रों की संख्या १८ होते हुए भी कालभेद, स्थान–भेद और अज्ञान के कारणों से गोत्रों की संख्या ३२ है :–

१. गर्ग, गरग गर। २. गोयल, गोइल, गोभिल, गोहिल। ३. गौतम गाइन, गोयन, गौण। ४. गावाल, गालव, ग्वाल, गरवाल, गवन। ५. कासिल, कांसिल, कांसल ६. कंछल, कांछल, कुच्छल, कचहल, कश्यप। ७. कांसिल, कौसल, कौशिक। ८. सिंहल, सिंगल, सींगल, सेंगल, सहगल। ९. बिंदल, बुगल। १०. बांसल, बांशल, बांसिल, बसल, वासिल, वासल, वात्सिल। ११. मित्तल, मीतल, मैतल। १२. जिंदल, जीतल, जींदल। १३, मंगल, मंडल, मिंदल, मांसल। १४. मुदगल, मुग्दल, मुधकल, मौगिल। १५. मैथल। १६. माण्डव्य। १७. भदल, भद्दल, भन्दल। १८. तगल, तागल, तिंगल, तिंगिल, तंगल तुन्दल, तुन्दिल, टींगल, टिंगल, टींगण, ढिंगल। १९. तित्तिल, तित्तल २०. तायल, ताइल, तैत्तरेय, तांडेय। २१. एरण, ऐरन, एरन, येरन औरन २२. टेरन, टेलण, ढरन, ढालन, टेरण, ढेलन, ढैलन, तैर, तैरन, धैरन, धरैन, टेहलन। २३. नागल, नागिल, नागेन्द्र। २४. इन्दल। २५. रगिल। २६. नितुन्दन। २७. मोहन। २८. जावाहि। २९. ऐरम्ब, मैजन। ३०. जैमिनी। ३१. धान्याश। ३२. महवार।

अठारह गोत्र तथा उनके शुद्ध रुप

उपर्युक्त ३२ गोत्रों को सूची में से ही आज सर्वाधिक प्रचलित १८ गोत्र निम्न प्रकार हैं और उनमें शुद्ध रूपों के प्रस्तावित सुझाव भी दिए जाते हैं :–

प्रचलित गोत्र	शुद्ध रूप	प्रचलित गोत्र	शुद्ध रूप
१ गर्ग	गर्ग	२ गोयल	गोभिल
३ गोइन	गौतम	४ बंसल	वत्स
५ कंसल	कौशिक	६ सिंगल	शांडिल्य
७ मंगल	मांड्य	८ जिंदल	जैमिनी
९ तिंगल	तांड्य	१० ऐरण	और्व
११ धारण	धौम्य	१२ मधुकुल	मुद्गल
१३ बिन्दल	वाशिष्ठ	१४ मित्तल	मैत्रेय
१५ भन्दल	भारद्वाज	१६ तायल	तैत्तिरेय
१७ कुच्छल	कश्यप	१८ नागल	नगेन्द्र

अब समय आ गया है कि जिस प्रकार हमने अपने बच्चों के नाम सार्थक एवं वर्ण प्रिय रखने आरम्भ कर दिए हैं उसी प्रकार अपने गोत्रों के नामों का भी शुद्धिकरण करके प्रचलित गोत्रों को ऋषियों के नामों के आधार पर ही रखें ऐसा मेरा सुझाव है। इस बात की शंका न की जाए कि अमुक गोत्र तो ब्राह्मणों से मिलता है वास्तव में तो ब्राह्मणों, वैश्यों और क्षत्रियों के गोत्र ऋषियों के नामों से ही लिए गए हैं और ऋषियों द्वारा ही, उनकी शक्ति जहां जहां भी गई, उन वर्णों को गोत्र दिए गए थे।

गोत्रों का परिपालन आवश्यक

गोत्रों का परिपालन ही तो अग्रवाल जाति की एक बड़ी विशेषता है। विवाह के अवसर पर गोत्र के उच्चारण द्वारा पिता पुत्र को गोत्र सौंपता चला आया है। अतः यह कड़ी आज से ५१२० वर्ष से सुरक्षित चली आ रही है। मैं तो यहां तक कहने को तैयार हूं कि जो वैश्य अपने गोत्र भूल गए हैं या अशुद्ध गोत्रों को ग्रहण किए हुए हैं वे पुनः यज्ञ करके अपने गोत्र ग्रहण करलें और आगे सगोत्र विवाह से बचें।

याज्ञवलक्य स्मृति में वैवाहिक प्रकरण में लिखा है कि निरोग भ्राता वाली, असमान ऋषि गोत्र की और माता की पांच तथा पिता की ७ पीढ़ी दूर की कन्या से विवाह करना चाहिए।

(याज्ञवलक्य मनुस्मृति श्लोक ५२)

यहां समान ऋषि गोत्र बचाने का स्पष्ट आदेश है। यहीं तक नहीं अपने से भिन्न गोत्र में विवाह करने की अवस्था में भी यह देखना आवश्यक है कि अपनी माता की ५ तथा पिता की ७ पीढ़ी की कन्या से विवाह न करे। सुधार के नाम पर गोत्रों का परित्याग शोभनीय या लाभ प्रद नहीं है। फिर गोत्रों के पालन में कोई कठिनाई भी नहीं होती क्योंकि आज तो अग्रवालों की संख्या एक करोड़ से ऊपर है जबकि आज से लगभग ५१२० वर्ष पूर्व अग्रोहा के १८ गण प्रतिनिधियों को महाराज अग्रसेन ने उनके कुटुम्ब के लिए १८ गोत्र दिलाए थे, उस समय अग्रोहा की जन सख्या १ लाख वैश्यों की थी। अतः बढ़ती हुई संख्या में तो गोत्र बचाकर विवाह की पुरानी परिपाटी की रक्षा करना और भी सरल है और स्वास्थ्य की दृष्टि से अच्छी बात है।

आज दिन अग्रवालों ने जहां गोत्रों के अधिकांश अशुद्ध रूप ग्रहण किए हुए हैं इसके साथ एक भ्रम यह भी फैला हुआ है कि महाराज अग्रसेन के १८ पुत्र थे और उनके गोत्र ही अग्रवालों के १८ गोत्र हैं जो तनिक भी बुद्धि रखता है वह इसे मतिभ्रम ही कहेगा। आज प्रचलित प्रणाली के अनुसार एक पिता के चाहे कितने भी पुत्र हों सभी का गोत्र एक ही होता है, अलग अलग नहीं। यदि महाराज अग्रसेन के १८ पुत्रों के १८ गोत्र होते तो सगोत्र विवाह न होते हुए भी एक भाई दूसरे भाई की कन्या से विवाह के दोष से कैसे मुक्त हो सकता है? साथ ही यदि एक भाई की कन्या का दूसरे भाई के पुत्र के साथ (भिन्न गोत्र होने पर) विवाह हो सकता है तो फिर गोत्रों की भी क्या आवश्यकता है? अतः विवेक शील लोगों का यह दृढ़ मत है कि अग्रवालो में प्रचलित १८ गोत्र अग्रोहा के १८ कुलों के १८ गण प्रतिनिधियों के गोत्रहैं और प्रत्येक गोत्रएक कुटुम्ब के बोधक है।

महाराज अग्रसेन का निज गोत्र गर्ग था और यही एक गर्ग गोत्र महाराज अग्रसेन के सभी पुत्रों का था। शेष सत्रह गोत्र अग्रोहा के १७ गण प्रतिनिधियों के थे।

इस सम्बन्ध में कुछ लोगों को मेरी इस शंका का समाधान इस रूप में करते पाया गया है कि सृष्टि के प्रारम्भ में भी तो सभी भाई बहन ही तो थे। किन्तु यह समाधानकर्ता यह भूल जाते हैं कि सृष्टि के प्रारम्भ में तो जो मानव सृष्टि हुई यह पृथ्वी के गर्भ में मैथुनिक सृष्टि थी। अतः उस समय उत्पन्न स्त्री पुरुषों में एक माता पिता से उत्पन सन्तान भाई बहन का रक्त सम्बन्ध न था, रक्त सम्बन्ध तो मैथुनिक सृष्टि के बाद प्रचलित हुआ। अतः इस समाधान के आधार पर महाराज अग्रसेन के १८ पुत्रों के १८ गोत्र मानना तर्क सगत नहीं है।

अन्तर प्रान्तीय विवाह

समस्त अग्रवाल अपना निकास स्थान अग्रोहा मानते हैं किन्तु सभी अग्रवाल (केवल १ परिवार को छोड़कर जो आज भी अग्रोहा में बसा है जिसके आज १५ घर हैं और आबादी १०० के लगभग है, सभी मित्तल गोत्र के हैं) अग्रोहा से बाहर ही बसे हुए हैं अतः इनमें प्रान्तीय वैवाहिक सम्बन्धों में विशेष अड़चन नहीं है। इस सम्बन्ध में महाराज अग्रसेन का स्वयं का विवाह दक्षिण पश्चिम मेंबसे नागवश की कन्याओं से हुआ था और वे स्वयं राजस्थान के पास के रहने वाले थे। उनके पुत्रों का विवाह भी नाग कन्याओं से हुआ था। अतः "दुहिता दूर हिता" की उक्ति के अनुसार अन्तर प्रान्तीय विशेष कर वैश्य मात्र में वैवाहिक सम्बन्धों में कोई बाधा या जातीय बन्धन बाधक नहीं है।

महाराज अग्रसेन द्वारा संचालितप्रणाली तथा अग्रवाल समाज

महाराज अग्रसेन ने अग्रगण राज्य की स्थापना तथा अग्रोहा के निर्माण के साथ ही कुछ ऐसे कार्य किए जिनकी स्मृति विशेष कर अग्रवाल समाज में और साधारण तया समस्त वैश्यों के लिए गौरव की बात है। एवं विचारणीय है :—

१. जिस स्थान पर आज अग्रोहा विद्यमान है, मरु प्रदेश है, जहा आज भी पानी का अभाव है। यह अभाव अग्रगण राज्य की स्थापना के समय और भी अधिक था अतः पानी की समस्या की पूर्ति हेतु महाराज अग्रसेन ने एक जलाशय बनवाया जो उन्हीं के नाम (अग्रोदक) से प्रसिद्ध हुआ। और उन्हीं के नाम से राजधानी का नाम अग्रोहा पड़ा।

२. महाराज अग्रसेन ने अपने समय में लगभग एक लाख वैश्यों का संगठन किया एवं अपने गण राज्य में प्रजा तन्त्रात्मक समाजवाद की स्थापना की।

३. अग्रोहा गण राज्य के एक लाख वैश्य १८ कुटुम्बों में बंटे थे (महाराज अग्रसेन के परिवार सहित) और इनके १८ गण प्रतिनिधि राज्य के संचालन के लिए उत्तरदायी थे। महाराज अग्रसेन राज्य प्रमुख रूप में १८ गण प्रतिनिधियों के शिरमौर (गण पिता) थे।

४. महाराज अग्रसेन १८ गण प्रतिनिधियों को पुत्रवत मानते थे और गण प्रतिनिधि उन्हें 'गण पिता' के रूप में मानते थे। इसीलिए आजकल बहुत से अग्रवाल भाई भावुकतावश महाराज अग्रसेन के १८ पुत्र मानते हैं। किन्तु उनकी यह भावना वस्तु स्थिति के विपरीत है।

५. महाराज अग्रसेन ने जहां वैश्यों को एक सबल गण राज्य दिया गण राज्य के १८ कुटुम्बी में भाई चारा और प्रेमभाव बनाए रखने के लिए उनके १८ गोत्र निर्धारित किए गए और परस्पर वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित कराके उन्हें आत्मीयता के बन्धन में बांध दिया।

महाराज अग्रसेन ने यज्ञ प्रथा को वैश्यों में पुनर्जीवित करने के लिए १८ यज्ञ कराए और उस समय प्रचलित यज्ञ में पशुबलि की प्रथा बन्द की।

७. साथ ही आपने १८ गण प्रतिनिधियों एवं परिवारी जनों को अमर उपदेश दिया :

अहं स्वभ्रतृन पुत्रांश्च तथा कन्या: कुटुम्बिन:।
इदमेवोप दिशामि न कश्चिद्वधमाचरेत ।।

— महाराज अग्रसेन

अर्थात मैं अपने भाई, पुत्रों, कन्याओं तथा कुटुम्बियों को यही उपदेश देता हूं कि कोई हिंसा न करे।

८. महाराज अग्रसेन ने अपने गण राज्य में समाजवाद का एक ऐसा स्वरूप उदाहरण प्रस्तुत किया जिस पर कोई भी समाज, देश

या जाति गर्व कर सकती है। वह था १ रुपया और १ ईंट। अर्थात जो भी वैश्य अग्रोहा जाकर बसता था उसे अग्रोहा निवासी १ रुपया और १ ईंट देकर लखपति तथा हवेली का मालिक बना देते थे और वह समानता के आधार पर गण राज्य का सदस्य बन जाता था। महाराज अग्रसेन की यह समाजवादी भावना उनके पुत्र विभु ने भी प्रचलित रखी।

महाराज अग्रसेन की उपर्युक्त आठों व्यवस्थाएं आज भी समाज और किसी भी देश का मार्ग प्रदर्शन करने में समर्थ है और उसे बहुत ऊंचा उठा सकती हैं। आज समाजवादी समाज का जो नारा सर्वत्र गूंज रहा है उससे अच्छा समाज निर्माण महाराज अग्रसेन ने किया।

वर्तमान युग की पुकार

महाराज अग्रसेन की भावनानुसार देश के समस्त वैश्यों का संगठन, विस्मृत गोत्रों का पुनुरुद्धार, वेदाध्ययन और यज्ञों का प्रचलन सार्वजनिक हित के लिए कुएं तथा जलाशयों का निर्माण, समस्त वैश्य जाति में यह भावना भरना है कि अग्रोहा न केवल अग्रवाल अपितु समस्त वैश्यों के लिए तीर्थ स्थान है तथा समस्त वैश्यों में संगठन की भावना का प्रचार समाज और देश के हित में है। ऐसा करके हम अग्रवाल समाज का विशेष रूप से तथा वैश्य समाज का साधारण रूप से हित करेंगे। महाराज अग्रसेन के कृतित्व आज के समाज के लिए प्रकाश स्तम्भ का कार्य कर सकते हैं। अतः आज युग की पुकार सुनें और समय के अनुसार उन पर ऐसा आचरण करें कि :-

"युग मुक्त कण्ठ से कह मैं तो बदल गया।
तुम पृष्ठ क्यों न खोल दो इतिहास का नया॥
छोड़ो पुरानी रूढ़ियां देखो नवीन रंग।
पिछड़े हुए स्वजाति बन्धुओं को लेके संग॥"

वैश्यों की प्रमुख शाखाएं

१ मारवाड़ी अग्रवाल २ देशवासिया (बीसा अग्रवाल) ३ महेसिये अग्रवाल ४ गुजराती अग्रवाल ५ मथुरिया अग्रवाल ६ मागधी अग्रवाल ७ मालवीय अग्रवाल ८ अवधी अग्रवाल ९ कन्नौजिया अग्रवाल १० दिलवालिया अग्रवाल ११ लोहिया अग्रवाल १२ गिदोड़िया अग्रवाल १३ कदीमी वैश्य अग्रवाल १४ दस्सा अग्रवाल १५ पंजा अग्रवाल १६ ढइया अग्रवाल १७ गुड़ाकू अग्रवाल १८ बहत्तरिया अग्रवाल १९ राजवंशी अग्रवाल २० जैन अग्रवाल २१ सिंघल अग्रवाल २२ अग्रहारी २३ निचौधिया वैश्य अग्रवाल २४ केसर वानी २५ माथुर वैश्य २६ महावर २७ माहौरे (माहौर) २८ बिनहरे २९ गुलहरे ३० जायसवाल ३१ चूरूवाल ३२ वर्णवाल ३३ खण्डेलवाल ३४ ओसवाल ३५ पुरवाल ३६ पदमावती ३७ पल्लीवाल ३८ टोकेवाल ३९ गोलवाल ४० गोयलवाल ४१ मीरतवाल ४२ कोल वार ४३ हलवाई वैश्य (यज्ञ सैनी) ४४ मगेड़वाल ४५ महेश्वरी ४६ ढाके महेश्वरी ४७ पोकरे महेश्वरी ४८ डीडो महेश्वरी ४९ रस्तोगी (रौहतगी, रुस्तगी) ५० वार्ष्णेय (बारह सैनी) ५१ चतुर्श्रेणी (चौसेनी) ५२ गांधारिया ५३ झाकड़े ५४ भटेवडे ५५ गौर चतुर्वेदी ५६ धूसर ५७ नरसिंह पुरी जैन ५८ नीमे ५९ कठूरा ६० नागर ६१ कुमारतन ६२ वाथम ६३ ओमर (ऊमर) ३४ अयोध्यावासी ३५ सम्मानीय ६६ मध्यदेशीय ६७ रोनियर ६८ हरिद्वारी ६९ चेट्टी ७० गांधी ७१ शाह ७२ बनौधिया वैश्य ७३ गहोई

53.

हमारे प्रकाशन

आग्रोतकान्वय

(अग्रवाल वैश्य जाति का इतिहास)

संशोधित एवं परिवर्धित

तीसरा संस्करण छप रहा है

लेखक—श्री निरंजन लाल गौतम

भूमिका लेखक—प्रो० कृष्ण दत्त वाजपेयी, अध्यक्ष—प्राचीन इतिहास, संस्कृति तथा पुरातत्व विभाग, सागर विश्व विद्यालय, सागर

अपना आर्डर भेजिए मूल्य १०)

❁ ❁ ❁ ❁

अ० भा० अग्रवाल परिचय ग्रंथ

(डायरेक्टरी)

छपाई का कार्य लगभग पूरा हो चुका है।

आप भी अपना परिचय छपाने के लिए फार्म मगा लें।

अपनी भांति का भारतवर्ष में पहला ग्रंथ

मुद्रकः—विज्ञान कला मुद्रणालय, ७/२८, ज्वालानगर, शाहदरा देहली-३२